वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

AUG-2025

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

ज्ञानवैभवधारी सातिशय श्रुतज्ञानके धनी
भावि तीर्थाधिनाथ की भेंट करानेवाले
चैतन्यरत्न प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन को
उनकी ११२वीं मंगलकारी जन्मजयंती प्रसंग पर शत शत वंदन

(पूज्य बहिनश्री) गणधरका जीव हैं, इसलिये भविष्यमें वे बारह अंगकी रचना करेंगे। बहिनश्रीकी नज़र बहुत सूक्ष्म थी जैसे कि वर्तमान समाजको वास्तवमें क्या देना ज़रूरी है, यह उनके ज्ञानमें बहुत आया है। उनके वचनामृत प्रसिद्ध हुए तब गुरुदेव फिदा हो गये ! आफरीन हो गये ! एक-एक बोलमें अकेला अध्यात्मका अमृत भरा है ऐसा कहना होगा। ...भावनाका विषय प्रस्थापित करके तो उन्होंने जैसे फ़ैसला ही कर दिया है। मुमुक्षुओंको तो जैसे एक रत्न ही हाथमें आ गया ऐसा कहना होगा।

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५१, अंक-३३२, वर्ष-२७, अगस्त-२०२५

'धन्य अवतार' प्रशममूर्ति भगवतीमाता प्रति पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रमोदपूर्ण हृदयोद्गार!!

जिसे आनन्द में जमावट हुई है, जो अतीन्द्रिय आनन्द के कौर ले रहा है और जो अतीन्द्रिय आनन्द को गट-गट पी रहा है, ऐसे धर्मी का (साधक का) यह स्वरूप बहिन के मुख से(वचनामृत में) आया है। बिल्कुल सादी भाषा। प्रभु के समवसरण में इस प्रकार बात चलती थी, भाई!...अरे! यह बात बैठे वह तो निहाल हो जाये ऐसा है। जिनेश्वर देव का जो फरमान है, वह बहिन कह रही हैं।

*

बहिनको असंख्य अरबों वर्षका ज्ञान है-९ भवका ज्ञान है (-४ भूतके, ४ भविष्यके) । बहिन तो भगवानके पाससे आयी हैं। अनुभवमेंसे यह बात आयी है। उदयभावसे तो मर गई हैं, आनन्दसे जी रही हैं। परमात्माके पाससे आयी हैं। साक्षात् परमात्मा तीन लोकके नाथ सीमंधरभगवान बिराजते हैं वहाँ हम साथ थे। क्या कहें प्रभु! सीमंधर परमात्माके पास कई बार जाते थे। उन भगवानकी यह वाणी है। बहिन तो आनन्दसागरमें....

*

बहिन को तो एक आनन्द... आनन्द... आनन्द! और दिन भर सहज निवृत्ति; बस, और कुछ भी नहीं। कोई वन्दन करे या न करे उसके सामने भी नहीं देखती। किसी के साथ कोई औपचारिक बातचीत नहीं।

*

अरे! यह जीव (बहिनश्री चंपाबेन) तो कोई

अलौकिक हैं! अधिक बोलतीं नहीं इसलिये कुछ नहीं हैं ऐसा नहीं है। यह तो गंभीर द्रव्य है!

इनका पुरुषार्थ तो इतनी प्रबलतासे उछल रहा है कि यदि वे पुरुष होतीं तो कबकी मुनिदीक्षा लेकर वनजंगलमें चलीं जातीं, यहाँ दिखतीं भी नहीं; क्या करें, स्त्रीका शरीर है!

...जिस प्रकार मालामें मनकोंका मेर होता है उसी प्रकार यह तो समस्त मंडलकी–मनकोंकी मेर हैं! इन्हींसे मंडलकी शोभा है। इनसे तो सब नीचे, नीचे और नीचे ही हैं।

*

२८ वर्ष हो चुके हैं जातिस्मरण हुए, परन्तु बाहर आनेकी जरा–सी भी जिन्हें (बहिनश्री चंपाबेनको) वृत्ति नहीं उठती – प्रतिबिम्ब जैसी स्थिर हो गई हैं। जिन्हें स्वयंको सागरोपम वर्षोंका ज्ञान है फिर भी गुप्त! मुझसे भी नहीं कहा। मेरी सब बातें कह जायें, परन्तु अपनी नहीं।....इनका आत्मा कितना गंभीर! अलौकिक! अचिन्त्य! अद्‌भुत!– शब्द कम पड़ते हैं! यह तो सागर समान गंभीर हैं।

*

बहिनको (चंपाबेनको) तो चार भवका ज्ञान (जातिस्मरण) है। असंख्य अरबों वर्षका ज्ञान है इन्हें। यह तो कोई अलौकिक आत्मा है। चंपाबेनकी शक्ति तो गजब है। नरम नरम नरम हैं। स्त्री–शरीर है परन्तु कहीं स्त्री शरीर थोड़ा ही बाधक होता है? ३४ वर्ष हो गये हैं उन्हें ज्ञान प्रगट हुए। स्त्रियोंमें धर्मरतन हैं।

*

बहिन (बहिनश्री चंपाबेन) तो आराधनाकी देवी हैं। पवित्रतामें सारे भारतमें अजोड़ हैं। उनकी छत्रछाया सारे सोनगढ़में है। ओहो ! बहिन तो भगवतीस्वरूप हैं। तुझे और कहाँ ढूँढ़ने जाना है?

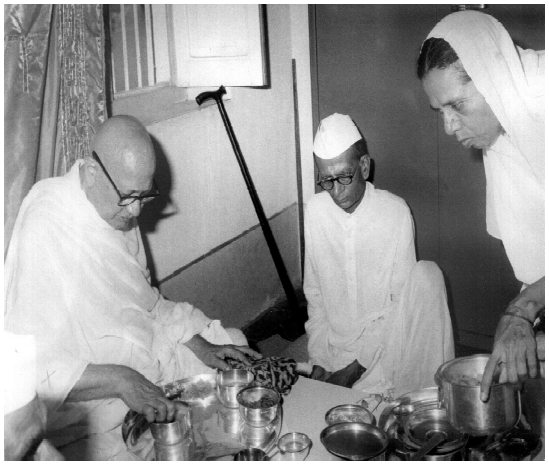

उनके दर्शन कर न! एक बार भावसे जो उनके दर्शन करेगा उसके अनन्त कर्मबंधन ढीले हो जाएँगे। उनके चरणोंसे जो लिपटा रहेगा उसे भले ही सम्यग्दर्शन न हो, तत्त्वका अभ्यास न हो, तो भी उसका बेड़ा पार है।

*

चंपाबेन तो इस कालका आश्चर्य हैं।

*

आज बहिनका जन्मदिन है न !.... सबको कितना उल्लास दिखायी देता है; उन्हें कुछ है? अध्यात्ममें उनकी स्थिति उदास, उदास एवं स्थिर है।

*

बहिन (चंपाबेन) की निर्मलता बहुत–बहुत! निर्मलता–निर्मलता ! अपूर्व–अपूर्व स्मरण ! शांत एवं गंभीर ! बहिन तो धर्मरतन हैं । महाविदेहमें बहुत निर्मलता थी; वहाँकी निर्मलता लेकर यहाँ आयी हैं। एकान्तप्रिय, शान्तिसे अकेली बैठकर पुरुषार्थ करती रहती हैं। उन्हें कहाँ किसीकी पड़ी ही है ! कुटुम्बकी भी नहीं पड़ी! अन्तर स्वरूप–परिणतिमें रहती हैं।

*

ओहो! बहिनके ज्ञानकी निर्मलताकी क्या बात कहें! बहुत स्पष्ट ज्ञान!....बहिन तो जबरदस्त आराधना करती हैं। अकेली बैठी अपना काम करती ही रहती हैं।....अब तो उन्हें बाहर लाना ही है। उनका जयजयकार होगा, उनकी बड़ी शानदार उन्नति होगी, जो जियेंगे वे देखेंगे। अलौकिक द्रव्य है, उनकी लाईन ही और है।

*

श्री कुन्दकुन्द-आचार्यदेव विदेहमें गये थे उसके कौन साक्षी हैं? साक्षी यह चंपाबेन बैठी हैं ये हैं।

*

बहिनकी गंभीरता तो देखो! बहिनके बोल (वचनामृत) बहुत गंभीर हैं। बहिनको तो कहां बाहर आना है? बहुत उत्तम हुआ कि बहिनकी यह पुस्तक बाहर आई। बहिनकी पुस्तक तो बहुत सरस! बहुत ही सरस! जिसे अध्यात्मकी रुचि हो उसके लिये तो बहुत ही अच्छी है। ऐसी पुस्तक कब बाहर आती! बहिनका तो विचार नहीं था और बाहर आ गई। जगतके भाग्य हैं!

*

बहिनका आत्मा तो मंगलमय है, धर्म-रतन है। हिन्दुस्तानमें बहिन जैसी अजोड़ स्त्रियोंमें कोई है नहीं, अजोड़ रत्न है। स्त्रियोंके तो महाभाग्य हैं जो ऐसा रत्न मिला है।

*

(बहिनश्रीको आते देखकर कहा-) बहिनके लिये जगह करो, 'धर्मकी शोभा' चली आ रही है। बहिन न तो स्त्री हैं, न पुरुष, वे तो स्वरूपमें हैं। भगवतीस्वरूप एक चंपाबेन ही हैं, उनकी दशा अलौकिक है। वे तो अतीन्द्रिय आनन्दमें मौज कर रही हैं।

*

यह तो बहिनके अन्तरके वचन हैं न! बहिनकी भाषा सादी, किन्तु अंतरकी है। अनुभव विद्वत्ता नहीं चाहता, अंतरकी अनुभूति एवं रुचि चाहता है। यह जो बहिनके शब्द हैं वे भगवानके शब्द हैं। भाषा भी नयी और भाव भी नये! सादी भाषामें अन्दर रहस्य है। लाखों पुस्तकें छप चुकी हैं, मैंने कभी कहा नहीं था; जब यह (वचनामृत) पुस्तक हाथमें आयी (देखी-पढ़ी) तब रामजीभाईसे कहा - भाई! यह पुस्तक एक लाख छपाओ।

*

(बहिनश्रीके वचनामृत) पुस्तक समय पर बाहर आई। बहिनको कहाँ बाहर आना ही है, किन्तु पुस्तकने बाहर ला दिया। भाषा सरल है किन्तु भाव बहुत गंभीर हैं। मैंने पूरी पुस्तक पढ़ ली है। एक बार नहीं किन्तु पच्चीस बार पढ़ ले फिर भी सन्तोष न हो ऐसी पुस्तक है। यह दस हज़ार पुस्तकें छपवाकर सब हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म' के ग्राहकोंको भेंट दी जाए ऐसा मुझे लगा।

*

यह बहिनके वचन हैं वे अनंत ज्ञानियोंके वचन हैं। इन्द्रोंके समक्ष इस समय श्री सीमंधरदेव जो कह रहे हैं वही यह वाणी है। यह पुस्तक साधारण नहीं है, इसमें तो बहुत कुछ भरा है। भाषा मीठी है, सादी है; भाव गहरे और गंभीर हैं। दिव्यध्वनिकी यह आवाज़ है। अरे! एक बार मध्यस्थरूपसे इसे पढ़े तो सही! भगवानकी कही हुई जो ॐकार ध्वनि है उसमेंसे निकला हुआ यह सार बहिनने कहा है।

*

इस कालका योग अनुकूल है; बहिन जैसोंका इस काल अवतार है। अरे! धर्मात्मा गृहस्थसे भेंट होना भी अनंत कालमें कठिन है। भाइयोंको इस काल धर्मात्मा पुरुष मिल जायें, परन्तु इस कालमें बहिनोंके भी सद्भाग्य हैं।

*

बहिनसे बोला गया अन्तरमेंसे। वहाँसे (विदेहक्षेत्रसे) आयी हुई बात है। बहिन वहाँसे आयी हैं।....बहिन (लड़कियोंके सामने) बोलीं और लिखा गया, नहीं तो बाहर आता ही कहाँसे? (यह सब) खोदना है पत्थरमें (संगमरमरके पटियोंमें)।

*

यह बहिन की भाषा बिल्कुल सादी और अन्तर से बोली गयी है। यह तो जरा बोली और लिखा गया, नहीं तो बाहर आये ही कहाँ से? अकेले रतन भरे हैं। अन्यमती को भी ऐसा लगे कि ऐसा कहीं भी नहीं है। हीरों का भण्डार है!

*

यह बहिनके वचन हैं। अंतर आनन्दके अनुभवमेंसे आयी हुई बात है। बहुत ज़ोर है अंतरका, अप्रतिहत भावना। आत्माका सम्यग्दर्शन और अतीन्द्रिय आनन्दकी अनुभूति – उसमेंसे यह बात आयी है। आनन्दके स्वादमें मुरदेकी भाँति चलती है। अहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु हैं बहिन! अंतरकी महत्ताके सामने बाहरका कुछ लक्ष्य ही नहीं है। अनुभवी, सम्यक्त्वी, आत्मज्ञानी हैं। आत्माका अनुभव तो है परन्तु साथ ही असंख्य अरब वर्षोंका जातिस्मरणज्ञान है। परन्तु लोगोंको बैठना कठिन पड़े।

*

बहिन (चंपाबेन) तो जैनकी मीरांबाई हैं।....भान सहितकी भक्ति है, अंधी दौड़ नहीं है।

*

वचनामृतके एक–एक बोलमें, एक–एक शब्दमें निधान भरे हैं। जिसे तल पकड़ना आता हो उसे अगाधता लगे स्वभावकी। पर्यायने प्रभुका संग्रहण किया, पूरा ज्ञानमें ले लिया। यह तो सिद्धान्तका दोहन है। जगतके भाग्य कि यह (बहिनकी पुस्तक) समय पर बाहर आ गई। थोड़े शब्दोंमें, सादी भाषामें, मूल तत्त्वको प्रगट किया।

*

चम्पाबेन सचमुच अद्वितीय रतन हैं; वे तो अन्तर से बिल्कुल उदास हैं; उन्हें बाहर का यह सब कुछ नहीं रुचता; परन्तु लोगों को तो भक्तिप्रेम से बहुमान करने के भाव आयें न!

*

बहिन तो महाविदेहसे आयी हैं। उनके अनुभवकी यह (वचनामृत) वाणी है। हीरोंसे सन्मान किया तब भी उन्हें कुछ नहीं। बहिन तो (थोड़े भवमें) केवलज्ञानी होंगी।

*

वचनामृत के एक-एक शब्द में पूरा सार भरा है। विचार को दीर्घरूप से लम्बाकर अन्तर में जा। आहाहा! बहिन की (चम्पाबेन की) कैसी स्थिति है! कहती हैं - 'आत्मा' बोलना सीखे तो यहाँ से (-गुरुदेव के पास से)! गजब है उनकी विनय और नम्रता!

*

बहिनको खबर नहीं कि कोई लिख लेगा। उन्हें बाह्य प्रसिद्धिका ज़रा भी भाव नहीं। धर्मरतन हैं, भगवती हैं, भगवतीस्वरूप माता हैं। (उनके यह वचन) आनन्दमेंसे निकले हैं। भाषा मीठी आ गयी है।

*

बहिन अभी तक गुप्त थीं। अब ढँका नहीं रहेगा - छिपा नहीं रहेगा। उनके वचन तो भगवानकी वाणी है, उनके घरका कुछ नहीं है- दिव्यध्वनि है। बहिन तो महाविदेहसे आयी हैं। यह वचनामृत लोग पढ़ेंगे, मनन करेंगे, तब ख्याल आयेंगा कि यह पुस्तक कैसी है! अकेला मक्खन है।

*

(बहिनकी) यह वाणी तो आत्माके अनुभवमें-आनन्दमें रहते-रहते आ गयी है। हम भगवानके पास पूर्वभवमें थे। बहुत ऊँची बात है। इस समय यह बात और कहीं नहीं है। बहिन (चंपाबेन) तो संसारसे भर गयी हैं। अपूर्व बात है बापू!

*

बहिनकी पुस्तक तो ऐसी बाहर आ गई है कि मेरे हिसाबसे तो सबको भेंट देना चाहिये। बहुत सादी-बालक जैसी भाषा; संस्कृत भाषा नहीं। बहुत ज़ोरदार गंभीर बातें उसमें हैं।

*

बहिनकी पुस्तकमें बहुत संक्षिप्त और माल-माल है। अन्यमतियोंको भी पसन्द आये ऐसा है।....अरे! उसमें तो तेरी महिमा और बड़ाईकी बातें हैं। मुनियोंकी कैसी बात ली है!-'मुनियोंको बाहर आना वह बोझ लगता है।' यह पुस्तक बाहर आई सो बहुत ही अच्छा हुआ। अंदर थोड़ेमें बहुत सी बातें हैं।

*

बहिन तो एक अद्भुत रतन पैदा हुई हैं। शक्ति अद्भुत है। अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनमें उन्हें (बाहरकी) कुछ पड़ी ही नहीं। हिन्दुस्तानमें उनके जैसा कोई आत्मा नहीं है। यह पुस्तक बाहर आई इसलिये कुछ खबर पड़ती है।

*

('धन्य अवतार' में से साभार)

'बहिनश्रीके वचनामृत' – 'मुमुक्षुकी गीता' !!

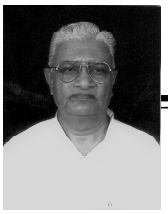

प्रशममूर्ति भगवती माता प्रति भक्तिपूर्ण हृदयोदगार !!

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

मुमुक्षु :– बहिनश्रीके कैसे सुंदर वचनामृत आये हैं!

पूज्य भाईश्री :– एक–एक वचनामृतमें बहुत दम है! इसी वज़हसे 'पूज्य गुरुदेवश्री'ने प्रशंसा करते हुए बहुत अच्छी बात की है। (परमागमसारमें) ८५ वाँ एक वचनामृत है। मुनिदशाका वर्णन करते हुए प्रशंसा की है। *'जैसे पुत्रमें पिताका प्रतिभास आता है वैसे ही मोक्षमार्गी मुनियोंमें वीतरागी जिनभगवानका प्रतिभास–वीतरागताका प्रतिभास झलकता है'* जिनेन्द्रकी परिपूर्ण वीतरागता जैसे प्रदर्शित है, प्रसिद्ध है, प्रगट है, इसकी झाँकी मुनि भगवान में आती है। वर्तमानमें ऐसे भावलिंगी मुनि उपस्थित नहीं होनेके बावजूद भी ठीक वैसा ही प्रकट किया है! यह श्रुतज्ञानकी शक्ति है। मतिश्रुतकी ऐसी शक्ति है कि वस्तु सामने मौजूद न हो तो भी कहनेका सामर्थ्य है कि वस्तु ऐसी है!

'श्रीमद्जी'ने अपूर्व अवसरमें लिखा। वे स्वयं कहाँ मुनि थे? (फिर भी) बिलकुल सटीक विवरण किया है कि मुनिदशा ऐसी होती है। *'शांत...शांत...वीतरागता... अकषाय झलकती है।'* मुनिराजका बाह्य स्वरूप ऐसा होता है कि इनकी शांति और वीतरागता छिपाये नहीं छिपती। अब इस ग्रंथके बारेमें स्वयं गुरुदेवश्री कहते हैं कि *'बहिनश्रीके वचनामृत'* जो कि ग्रंथका नाम है। *'पढ़े तो हृदयमें सत्यकी गहरी चोट लगे ऐसी बातें हैं।'* व्यक्तिको मर्मस्थलमें चोट लगती है जो जल्दीसे ठीक नहीं होती। यह तो ऐसा घाव है कि सादिअनन्त काल तक (समाधिसुख हो जाता है) एकबार चोट लगनी चाहिये। यहाँ इसके संस्कार (डल जाते हैं) रुचिपूर्वक सुने और संस्कार न पड़े यह न भूतो न भविष्यतिः, कभी सम्भव नहीं, कभी बना नहीं कभी बनेगा नहीं। – यह बात स्वयंने विषयको पहचान कर स्पष्ट की है।

यह 'गुरुदेवश्री' जैसे असाधारण विश्वविभूतिका certificate है। Certified by नहीं लिखते? जैसे कोई degree का धारक अधिकारी होता है तो नहीं कहते? ये court में भी चलता है न? Copy attested की हुई रहती है – Certified by so and so. इस जज द्वारा यह certify की हुई बात है। ठीक! अब इसमें कोई शक नहीं होता। यह 'गुरुदेवश्री'ने certify करके दिया है कि, यह ग्रंथ ऐसा है कि यदि रुचिपूर्वक इसका अध्ययन व स्वाध्याय किया जाये तो जीवको अवश्य संस्कार की प्राप्ति हो जाये ऐसा है। आत्माके हित विषयक यह सर्व प्रथम चरण है। फिर अवश्य उस आत्माका हित होगा होगा और होगा ही। – *'ऐसी*

बातें हैं। यह पक्षकी बात नहीं है।' – यह ऐसा कहना पड़ा है क्योंकि कुछ लोग इसे गलत नज़रियेसे देखते होंगे कि वे पक्ष करते हैं, गुरुदेवश्री भी पक्ष करते हैं – इसलिये कहना पड़ा है कि यह पक्षकी बात नहीं है। *'वस्तुस्थितिकी बात है।'* वस्तुस्थितिको देखते हुए कहते हैं कि, यदि आत्महित करना हो तो जैनदर्शनके वर्तमान साहित्यमें एक बढ़िया नये ग्रंथकी बढौतरी हो गई। नया मतलब? वैसे तो मूलभूत बात है परन्तु इसकी शैली ऐसी आयी है कि कमसे कम क्षयोपशमवाला जीव भी सरलतासे समझ सके ऐसी यह उपलब्धि हुई है।
(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल-११२, 'अध्यात्मसुधा' भाग-३, दि.-१५-५-१९८७, पन्ना-४४८ से ४५०, प्र.क्र.-८८)

*

मुमुक्षु :- 'गुरुदेवश्रीने' हमें बहुत करुणा करके कहा है कि 'जो बहिनश्रीके आश्रयमें रहेंगे उनका बेड़ा पार हो जायेगा।'

पूज्य भाईश्री :- (सीधी) आज्ञा ही कर दी है वास्तवमें देखें तो। और वास्तविकता भी ऐसी है कि, ऐसे निकृष्ट कालमें यह तो गुरुदेवश्रीका double उपकार है! पहला उपकार आत्माको दिखाया और दूसरा उपकार सत्पुरुषको दर्शाते गये वह है। वरना आम दृष्टिसे सुने कि, ठीक है! ये तो महापुरुषने कह दिया है परन्तु बात पर ज़ोर देनेकी आवश्यकता है क्योंकि बहुत बड़ी बात कर दी यह उनका दुगना उपकार है! वरना सामान्यतः पूर्वाग्रह ऐसा होनेसे कि, ठीक है, ठीक है – ऐसे गौणता जीव करके उपेक्षामें रह जाता है। ऐसी अनजानेमें भी उपेक्षा या अवहेलना जीव न कर बैठे इसलिये यह स्पष्टता की है।

मुमुक्षु :- संकेत कर गये हैं ये हमारेसे विशेष हैं।

पूज्य भाईश्री :- बहुत कुछ कहा है। कहनेमें तो कुछ एक लोग सहन न कर सकें इतना कुछ कहा है। परन्तु जिसको हितबुद्धि होती है उसे तो थोड़ा कहने पर भी अधिक समझमें आ जाता है। इतनी हद तक कहनेकी आवश्यकता तो जब लगी होगी कि, कुछ एक जीव विशेष उपेक्षाभावमें रहते होंगें (इसीलिये) विशेष ज़ोर पूर्वक कहा। जिसको अपना कल्याण करना हो वह समझ ले। इसके सिवा तो उपाय जगतमें हैं नहि।

मुमुक्षु :- पुरुष होते तो मुनिराज हो जाते!

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सही बात है। अगर कोई गृहस्थीमें हो, गृहस्थके योग्य उदयभावमें हो उसे तो पहचानना जीवोंके लिये बहुत मुश्किल पडे और अनेक जगह शंका उठे। लेकिन पूज्य बहिनश्रीका जीवन त्यागी जैसा जीवन, निवृत्त जीवन बाहरमें मन-वचनका योग भी अनुकूल कि जिसके लिये किसीको पूछने जाना न पडे, समझनेके लिये ज्यादा बुद्धिकी ज़रूरत न पडे, फिर भी अगर कोई न समझे तो इसका तो कोई इलाज नहीं है। पूज्य बहिनश्री इतने शांत और गंभीर, प्रशमभाव युक्त मन-वचन-कायाके योग जो कि सहजरूपसे ज्ञानीके रूपमें पहचान

करा दे ऐसी परिस्थिति है। 'श्रीमद्जी' थे तो गृहस्थ। शंका उठे, व्यापार–धंधा, कुटुंब–परिवार (सब कुछ था।) 'सोगानीजी' भी गृहस्थ थे (तो पहचानना मुश्किल पड़े) इन्हें (पूज्य बहिनश्रीको) तो आसानीसे समझा जा सकता है।

(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल–६०, 'अध्यात्मसुधा' भाग–२, दि.–१६–३–१९८७, पन्ना–२७०,२७१, प्र.क्र.–४८)

*

ये (बहिनश्रीके) वचनामृत पर प्रवचन जब करते तब 'गुरुदेवश्री' ऐसा कहते थे कि, यह भगवानकी वाणी है! ये दिव्यध्वनिमें आया हुआ विषय है! यह भगवानकी वाणी जिनवाणी है, वैसी ही यह जिनवाणी है।

...वर्तमान समाजको अभी क्या ज़रूरी है – यह जो 'पूज्य बहिनश्री'के ज्ञानमें जो आया हैं वह असामान्यरूपसे आया है। अतः उनके प्रवचनमें भी वही विषय आया है। ये सारी बातें तो प्रवचनमें से निकली हुई बातें लिखी गई हैं न? भले ही बरसों पहले बातें हुई हैं फिर भी वर्तमान मुमुक्षु समाजकी योग्यतामें क्या परोसना चाहिये, क्या देना चाहिये, क्या देना आवश्यक है यह बहुत विशिष्टरूपसे ज्ञानमें आकर ये बातें निकली हैं।

(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल–६१, 'अध्यात्मसुधा' भाग–२, दि.–१८–३–१९८७, पन्ना–२९४,२९५, प्र.क्र.–५०)

*

(पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत पर प्रवचन करते हुए) – जी हाँ, एक–एक वचनामृत ऐसे हैं! मुमुक्षुओंके लिये नित्य स्वाध्याय करनेका अगर कोई शास्त्र हो, जैसे अन्यमतमें कहते हैं न? वहाँ 'गीता'को प्राधान्य देते हैं और 'गीता'में आगे एक 'गीता'के 'माहत्म्य' नामसे पाठ आता है। जो दूसरे द्वारा रचित होता है। 'गीता'की मूल रचना नहीं है। इसमें हररोज़ गीताके पठन पर बहुत ज़ोर दिया गया है कि, रोज़ाना पूरी 'गीता'को पढ़ना, यदि पूरीं नहीं पढ़ सको तो रोज़ाना एक अध्याय पढ़ना, हररोज़ एक अध्याय नहीं पढ़ सको तो इसके कुछ एक श्लोक पढ़ लेना, कम से कम एक श्लोक तो ज़रूर पढ़ना। परन्तु हररोज़ तुम गीता ज़रूर पढ़ना। तो वैसे मुमुक्षुके लिये 'गीता' जैसा यह ग्रंथ हैं। मुमुक्षुके योग्य बहुत सी बातेंकी हैं। सम्यक्दृष्टि–ज्ञानीकी दशाके भी विध–विध परिणाम दरशाये हैं कि जिससे मुमुक्षु इसके अनुरूप अपनी दशाको प्रगट कर सके, इसके अनुसार अपनी विचारधाराको सुसंगत बना सके और मुमुक्षुके लायक अनेक प्रकारकी, अनेक पहलुओंसे बातें की हैं और सबकी सब अनुभवगम्य और अनुभवसिद्ध बातें हैं।

(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल–४९, 'अध्यात्मसुधा' भाग–२, दि.–२५–१–१९८७, पन्ना–१४८, प्र.क्र.–४१)

*

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री द्वारा लिखित भक्तिमय पत्र

('बहिनश्री की साधना और वाणी'मेंसे साभार)

अहो! श्री सद्गुरुदेव! मेरे जैसे पामर पर आपने अपार करुणा बरसाई है। आपकी क्या सेवा-भक्ति करें! जो करें, वह सब कम है।

मन, वचन, काया द्वारा निरन्तर समीपरूप से आपकी चरणसेवा हो, यह ही हृदय की गहरी भावना है। इस काल में, इस भरतक्षेत्र में छुपा हुआ मोक्षमार्ग आपने स्वयं ही ढूँढ़कर, अन्यों को वह मार्ग समझाकर अपूर्व उपकार किया है।

अहो! गहन और गहरा वस्तु का स्वरूप, सूक्ष्म और तीक्ष्ण श्रुत शैली से समझाकर, ज्ञान के रहस्यों को खोलकर, हमारे जैसे पामर पर अनन्त-अनन्त उपकार किये हैं! अहो! प्रभु! हम आपकी भक्ति-सेवा के अलावा अन्य क्या कर सकते हैं!

आपके चरणकमलों में परम भक्ति से बारम्बार नमस्कार।

*

परम उपकारी, भरतक्षेत्र में अपूर्व श्रुतधारा बरसानेवाले, मंगलमूर्ति गुरुदेव को परम भक्ति से नमस्कार।

श्री कहानगुरुदेव के पावनकारी आहारदान के प्रसंग, एवं उसी तरह पूज्य गुरुदेव के साथ तीर्थयात्रा के अवसर, श्री जिनेन्द्र प्रतिमाओं के कल्याणक अवसर आदि पुनीत प्रसंग, वे सब पुण्योदय से बनते हैं, उन प्रसंगो को याद करते हुए उल्लास आता है।

श्री गुरुदेव के अन्तर में प्रकटे हुए, जाज्वल्यमान श्रुतज्ञानसूर्य द्वारा अनुपम रहस्य झरती अमृतवाणी निरन्तर सुनने का अपूर्वयोग प्राप्त हुआ है, वह महाभाग्य है।

गुरुदेव की निरन्तर वाणी, उनके आहारदान आदि के पावन प्रसंग जो पंचम काल में मिले हैं, वे अहोभाग्य है।

अनन्त काल के परिभ्रमण का दुःख और विभावों का दुःख, सर्व परभावों के भेदभावों से भिन्न, शुद्धात्मतत्त्व को दिखानेवाली, गुरुदेव की वाणी से सहज टलता है।

पूज्य गुरुदेव ने शुद्धात्मतत्त्व को प्रकट करने का मार्ग बताकर, पंचम काल में अनेक जीवों के दुःख टाले हैं, सुखधाम, आनन्दधाम, आत्मा को प्रकट करने का मार्ग सुगम किया है।

परम परम उपकारी गुरुदेव के चरणकमलों में परम भक्ति से बारम्बार नमस्कार।

*

सोनगढ़, वि.सं. २००३
(ई.स. १९४७)

...!

अपूर्व मार्ग प्रकाशक, कृपालु गुरुदेव के चरणकमल में परम भक्तिसह बारम्बार नमस्कार!

द्रव्यजीवन और भावजीवन के आधार, अपूर्व, सर्वस्व उपकारी, परम–कृपालु, अद्‌भुत गुरुदेव सुख–शान्ति में विराजते हैं। शारीरिक प्रकृति अच्छी है।

अब तो विभाव के सभी विकल्पों से छूटकर, वीतराग–पर्यायरूप परिणमन होगा, तब धन्यता होगी! हजारों मुनियों के वृन्द जिस काल में विचरण करते होंगे, वह प्रसंग धन्य है! ऐसे काल में मुनित्व को लेकर घड़ी में (अल्प समय में) अप्रमत्त, घड़ी में (अल्प समय में) प्रमत्त – ऐसी दशा को साधकर, वीतरागी पर्यायरूप परिणमेंगे, तब धन्य होंगे। अभी भी जैसे बने वैसे पुरुषार्थ बढ़ाकर, निर्मल पर्याय को विशेष–विशेष प्रकट करना, वही श्रेयरूप है।

लि.
निरन्तर श्री देव–गुरु–शास्त्र की सेवा
इच्छनेवाली बहिन चम्पा के यथायोग्य...
– श्री वीतरागभाव को नमस्कार

*

परमकृपालु कहान गुरुदेव का इस पंचम काल में अद्वितीय अवतार है। जिनके दर्शन और अमृतमयी वाणी भगवान के विरह को भुलाये ऐसी है, उनकी वाणी की अनुपमधारा चैतन्य को पलटाये, ऐसी अद्‌भुत है, अहो! ऐसे परम उपकारी कहान गुरुदेव की क्या महिमा हो!

परमकृपालु गुरुदेव के चरणो में परमभक्ति से नमस्कार।

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (अगस्त–२०२५, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि
श्रीमती कृपालीबहिन पियुषभाई भायाणी, कोलकाता
की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

जीवको अधोगतिमें जानेका कारण – कुटुंबमोह और परमें निजबुद्धि !

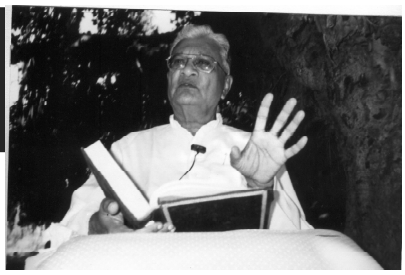

श्रीमद् राजचंद्र, पत्रांक–५१० पर प्रवचन

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

(श्रीमद् राजचंद्र – वचनामृत) पत्र – ५१० वाँ चल रहा है। मुमुक्षुकी भूमिकामें दर्शनमोह यथार्थ प्रकारसे जब तक कमज़ोर नहीं होता, तब तक मुमुक्षुको भी कुटुंब प्रतिबंध रहता है। कृपालुदेवने चार प्रकारके प्रतिबंध बताये हैं। समाज प्रतिबंध, कुटुंब प्रतिबंध, शरीर प्रतिबंध और संकल्प–विकल्प प्रतिबंध।

समाजकी मुख्यता करके आत्मकल्याणके साधनको गौण करना यानी आत्मकल्याणको गौण करना, यह समाज प्रतिबंध है। इसमें समाजकी नज़रमें अपनी इज्जत बनाये रखनेका अभिप्राय रहता है। उस अभिप्रायके कारणसे तीव्र परलक्ष रहता है। और परलक्ष रहनेके कारणसे जीव अपना स्वलक्ष चूक जाता है। अपना आत्मकल्याण वह कर सकता नहीं।

ठीक उसी तरह कुटुंब प्रतिबंध होता है। उसमें कुटुंबको मुख्य करके या कुटुंबके कार्योंको मुख्य करके, कुटुंब स्नेहके वशात् आत्मकल्याण और आत्मकल्याणके साधनको गौण कर देना, यह कुटुंब प्रतिबंध है। कृपालुदेवने इस पत्रमें जो उपदेश दिया है, वह कुटुंब प्रतिबंध हटानेके लिये दिया है। कुटुंब प्रतिबंध किसका हटता है ? कि जिसका दर्शनमोह कमज़ोर होता है उसका। दर्शनमोहसे परिणाम क्या होता है ? कि कुटुंब परिवार आदिमें अपनत्व रहता है।

अपने स्वाध्यायमें कल चर्चा चल रही थी कि, अपनत्व करके कुटुंबके कार्य नहीं करने हैं। कुटुंबकार्य तो करना ही पड़ेगा और प्रामाणिकतासे करना भी चाहिये। क्यों? क्योंकि अपनी (कुछ) सुविधायें भी कुटुंबसे मिलती हैं। (और) कुटुंबवालेको भी हमारेसे सुविधा मिलनी चाहिये। यह तो परस्परकी duty हो जाती है। जब यह फ़र्ज़ निभाना है तब हमें सावधानी क्या रखनी है? उतनी सी बात है। हमें वह सावधानी रखनी है कि, अपनत्व नहीं करना है। अपनत्व नहीं करना चाहिये ऐसा प्रयास करनेसे अपनत्व ढीला होता है। मुमुक्षुकी भूमिकामें (अपनत्व) जाता नहीं, जायेगा तो ज्ञानदशामें ज्ञानीका जायेगा। मुमुक्षुकी भूमिका पार करके ज्ञानदशामें प्रवेश होगा तब यह अपनत्व जायेगा। इसके पहले मुमुक्षुको अपनत्व जाता नहीं लेकिन ढीला तो अवश्य कर सकता है और ढीला हुए बिना जायेगा भी नहीं। जब तक (अपनत्व) तगड़ा होगा तब तक तो जानेवाला है ही नहीं। कुटुंबकार्य करते हुए

भी अपनत्व ढीला हो जाये, यह मुमुक्षुकी सही भूमिका है। इस विषयमें बात कर रहे हैं।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! अगर कुटुंबमें पति-पत्नी दोनों मुमुक्षु हों, उसमें अपना अपनत्व और कुटुंब प्रतिबंध नहीं बढ़े और मुमुक्षुके प्रतिका वात्सल्य भी बना रहे, उसमें संतुलन किस प्रकारसे रखना चाहिये ?

पूज्य भाईश्री :- जब कुटुंबमें भी कुटुंबके सदस्य (मुमुक्षु) हो - चाहे पति-पत्नी हो, चाहे पिता-पुत्र हो, चाहे भाई-भाई हो, कोई भी संबंध हो; जब दोनोंकी आत्मकल्याणकी भावना है तो दोनों तो समझदार हो गये कि, अपनेको अपनत्व किये बिना, साधर्मी वात्सल्य और बढ़ाकर एक दूसरेको आत्मकल्याण करनेमें सहकार देना है। (बहुत) अच्छी बात है। उसमें तो कोई आपत्ति नहीं होती।

मुमुक्षु :- एक भय रहता है कि, वात्सल्यकी आड़में कहीं अपनत्वकी feeling develop नहीं हो जाये!

पूज्य भाईश्री :- अपनत्व होना अलग बात है (और) वात्सल्य होना अलग बात है। वात्सल्य है वह धर्मप्रेम है। वात्सल्य क्या चीज़ है ? धर्मप्रेमको वात्सल्य कहते हैं और संसारप्रेमको वात्सल्य नहीं कहते। वह तो संसारका राग है। संसारका जो परस्परका राग है, उसका आधार - उसका माध्यम धर्म नहीं है। यहाँ वात्सल्यका माध्यम धर्म है। क्या है ? वात्सल्यका माध्यम धर्म है। माध्यम बदल जाता है, यह समझ नहीं सके क्या ? माध्यमको नहीं समझ सके क्या? कि हमारा माध्यम कौनसा है ? देखो ! कुटुंबके रागमें अधिकारबुद्धि होती है। क्या होता है? अधिकारबुद्धि होती है। और धार्मिक वात्सल्यमें मैत्री रहती है। मित्र कभी अधिकार करता है क्या ? जो सच्ची मैत्री (होती) है उसमें अधिकार नहीं होता, स्नेह होता है - प्रेम होता है। संसारके संबंधमें तो अधिकारबुद्धि आये बिना रहेगी नहीं (कि), 'यह मेरा अधिकार है।' यह संबंध जो है उस संबंधके नाते अधिकारको भोगनेकी वृत्ति रहती है। तो दोनोंमें तो बहुत बड़ा फ़र्क़ है। एकदम (दोनोंके) विभाग हो जाते हैं - बात अलग हो जाती है।

मुमुक्षु :- प्रश्नके संदर्भमें दूसरा प्रश्न है कि, पति-पत्नी दोनों एक दूसरेके साथ सहमत नहीं होवे, तो क्या करना चाहिये ?

पूज्य भाईश्री :- जब एक दूसरेके विचारभेद चलते हों - अभिप्राय विरुद्ध चलता हो - भेद माने विरुद्ध समझे। तो सबसे पहले तो समझानेकी कोशिश करनी चाहिये कि, देखिये! हमारा - आपका जो संबंध है उसमें एक दूसरेको नुकसान होवे, बुराई होवे या एक-दूसरेको कोई तकलीफ होवे - दुःख पहुँचे - यह तो (हम लोग) आपसमें चाहते नहीं। अपनत्व होनेसे एक-दूसरेको दुःखी तो करना नहीं चाहते। तो पहले तो समझानेकी

कोशिश करनी चाहिये कि, देखिये ! ऐसा लोकोत्तर सुखका मार्ग, लोकोत्तर सुखका उपाय, (उसकी) पूरी line कहीं नहीं मिलती। एक इसी धर्मके सिवा विश्वमें कहीं नहीं मिलती। ऐसी अमूल्य चीज़को समझनेकी कोशिश करो। समझ आनेसे (दूसरा कुछ) कहना नहीं पड़ेगा। जहाँ तक (बात) समझमें नहीं आती, वहाँ तक समझाना पड़ता है। फिर भी संसारके कोई बंधन और मोहके वशात् समझना ही नहीं चाहे, ऐसा भी बन सकता है। कोई तो समझदार होता है तो समझता है। क्योंकि अपने निज सुखकी तो बात है। बात तो अपने सुखकी है – अपने स्वार्थकी है। बहुभाग तो समझदार (हो तो) समझ जाता है। लेकिन (कुछ) लोग ऐसे भी होते हैं – नासमझ होते हैं – समझना चाहते भी नहीं, ऐसा भी बनता है। तो फिर उस पर कोई बात थोपना नहीं। थोपना नहीं, दबाव लाना नहीं, कुछ नहीं करना। उसकी स्वतंत्रता उसको भोगने दो। और अपने तो अपने रास्ते पर चलो! अपने अपना कार्य करो ! इस विषयमें फिर चर्चा करोगे तो उसे लगेगा कि मेरे पर दबाव आ रहा है, अपनी मान्यताको थोप रहे हैं, अपने विचारोंको लादते हैं। (हमें) लादना नहीं है, थोपना नहीं है। इतनी सावधानी रखकर कोई appeal करता है तो बहुभाग समझदार होता है तो (वह) समझ जाता है। कोई नासमझ होवे और नहीं समझे तो बातको छोड़ देना। मान लेना कि, अभी इनका परिभ्रमण ज्यादा है। इनकी होनहार अच्छी नहीं है तो हम क्या करेंगे ? जिसकी होनहार अच्छी नहीं है, जिसका परिभ्रमण बहुत है, इसे इस बातकी रुची नहीं हो सकती है तो उसमें अपना कोई प्रयास काममें नहीं आयेगा और हठसे कुछ करेंगे तो क्लेश बढ़ जायेगा। (अपनेको) क्लेश करना नहीं है और बढ़ाना भी नहीं है। अपने-अपने कार्यमें लगो! उसे उसका काम करने दो ! (कोई भी) बात शांतिसे, समझदारीसे करनी है। अगर ठीक हो गया तो इसका भी भला है और नहीं ठीक हुए तो हम क्या करेंगे ? इसका तो कोई इलाज संसारमें – जगतमें है ही नहीं। सब स्वतंत्र हैं। उसकी स्वतंत्रता पर तराप लगाना, यह हमारा काम नहीं है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! लौकिक मित्रता और धार्मिक मित्रता दोनोंमें निस्वार्थता है, तो इसमें कैसे लेना ?

पूज्य भाईश्री :- लौकिक मित्रतामें ९९% निस्वार्थता नहीं होती। अपवादको एक ओर रख दें। बाकी ९९% तो कुछ न कुछ स्वार्थ होता ही है। धार्मिक मित्रतामें स्वार्थ नहीं होता। धार्मिक मित्रतामें तो अगलेकी भलाईको मुख्य रखकर मित्रता रखी जाती है। इसका भी भला हो, इसका भी कल्याण हो, उतनी सी बात है।

*

(शेष प्रवचन अगले अंकमें..)

'मार्गदर्शन'

– 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

बंधन रहित स्वभावके लिए वांचन-मनन-धूँटण करुँ तो पकड़में आवे, ऐसी बात ही नहीं है। 'वह तो मैं त्रिकाली ही हूँ' – ऐसे वर्तमानमें ही उसमें थँभ जावो। (विकल्पातीत स्वभावके विकल्पसे कभी अनुभव नहीं होता है; परंतु निर्विकल्प स्वभावकी प्रत्यक्षताको प्रत्यक्षतौरसे आविर्भूत करनेसे, परोक्षता विलीन होकर अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष अनुभव होता है।) **(३९४)**

*

(चर्चा सुननेवालोंको लक्ष्यमें लेकरः) **सुननेकी रुचि तो सभीकी ठीक है; परंतु उससे अनंतगुनी रुचि अंदरकी होनी चाहिए।** (वास्तवमें स्वरूपकी रुचिका ऐसा स्वरूप है कि इसके आगे तत्त्व सुननेकी रुचि कुछ नहीं है। अतः तत्त्व सुनने-पढ़ने आदिकी रुचिमें मुमुक्षु जीवको ठीकपना नहीं लगना चाहिए। 'अंतर्मुख होनेमें बहुत बाकी है'- ऐसा ख़याल रहना चाहिए।) **(४१३)**

*

असलमें बलवान वस्तुका बल आना चाहिए। **(४१६)**

*

'ख़ुद ही से काम होगा' यह तो पहले ही पक्का हो जाना चाहिए। ख़ुदका बल आए बिना तो (अन्य) **कोई आधार** (उपाय) **नहीं है।** **(४२६)**

*

'पहले मैं सब समझ लूँ (धारणा कर लूँ) **पीछे प्रयास करुँगा' – ऐसे तो कार्य होगा ही नहीं।** (अंतर-) **प्रयास तो सुनते ही चालू हो जाना चाहिए। फिर थोड़ी रुकावट आवे तो उसे दूर करनेके लिए सुनने-समझनेका भाव आता है; परंतु 'मैं वर्तमान में ही परिपूर्ण हूँ'-वहाँ चोंटे (वलगे) रहकर ही सब प्रयास होना चाहिए – वहाँसे तो छूटना ही नहीं चाहिए।** **(४२८)**

*

परिणाममें बैठे हो तो द्रव्यमें बैठ जाना है। परिणाम तो कम्पायमान है; द्रव्य निष्कम्प है। काँपनेवाले परिणामके आश्रयसे कम्पित ही रहोगे; निष्कम्प द्रव्यके आश्रयसे निष्कम्पता होगी। **(४३०)**

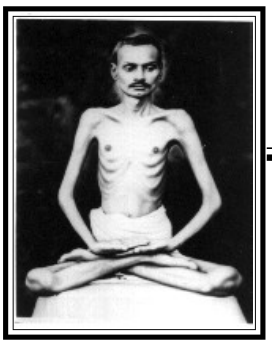

– परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी राजहृदय !!

पत्रांक – ३९१

बंबई, श्रावण सुदी १०, बुध, १९४८

केवल निष्काम यथायोग्य।

हम यहाँ उपाधियोगमें हैं, ऐसा समझकर पत्रादि भेजनेका काम नहीं किया होगा, ऐसा समझते हैं। शास्त्रादि विचार और सत्कथा-प्रसंगमें वहाँ कैसे योगसे रहना होता है? सो लिखियेगा।

'सत्' एक प्रदेश भी दूर नहीं है, तथापि उसकी प्राप्तिमें अनंत अंतराय-लोकानुसार प्रत्येक ऐसे रहे हैं। जीवका कर्तव्य यह है कि अप्रसत्तितासे उस 'सत्'का श्रवण, मनन और निदिध्यासन करनेका अखंड निश्चय रखे।

आप सबको निष्काम यथायोग्य।

*

पत्रांक – ३९२

बंबई, श्रावण सुदी १०, बुध १९४८

हे राम! जिस अवसरपर जो प्राप्त हो उसमें सन्तुष्ट रहना, यह सत्पुरुषोंका कहा हुआ सनातन धर्म है, ऐसा वसिष्ठ कहते थे।

*

पत्रांक – ३९३

बंबई, श्रावण सुदी १०, बुध, १९४८

मन महिलानुं रे वहाला उपरे, बीजां काम करंत।
तेम श्रुतधर्मे रे मन दृढ धरे, ज्ञानाक्षेपकवंत।।

जिसमें मनकी व्याख्याके विषयमें लिखा है वह पत्र, जिसमें पीपल-पानका दृष्टांत लिखा है वह पत्र, जिसमें 'यमनियम संयम आप कियो' इत्यादि काव्यादिके विषयमें लिखा है वह पत्र, जिसमें मनादिका निरोध करते हुए शरीरादि व्यथा उत्पन्न होने संबंधी सूचन है वह पत्र, और उसके बाद एक सामान्य, इस तरह सभी पत्र मिले हैं। उनमें मुख्य भक्तिसंबंधी इच्छा, मूर्तिका प्रत्यक्ष होना, इस बात संबंधी प्रधान वाक्य पढ़ा है, ध्यानमें है।

इस प्रश्नके सिवाय बाकीके पत्रोंका उत्तर अनुक्रमसे लिखनेका विचार होते हुए भी अभी उसे समागममें पूछने योग्य समझते हैं, अर्थात् यह जताना अभी योग्य लगता है।

दूसरे भी जो कोई परमार्थसंबंधी विचार–प्रश्न उत्पन्न हों उन्हें लिख रखना शक्य हो तो लिख रखनेका विचार योग्य है।

पूर्वकालमें आराधित, जिसका नाम मात्र उपाधि है ऐसी समाधि उदयरूपसे रहती है।

अभी वहाँ पठन, श्रवण और मननका योग किस प्रकारका होता है?

आनन्दघनजीके दो पद्य स्मृतिमें आते हैं, उन्हें लिखकर अब यह पत्र समाप्त करता हूँ।

इणविध परखी मन विसरामी जिनवर गुण जे गावे।
दीनबन्धुनी महेर नजरथी, आनंदघन पद पावे।।
हो मल्लिजिन सेवक केम अवगणीए।

मन महिलानुं रे वहाला उपरे, बीजां काम करंत,

जिन थई जिनवर जे आराधे, ते सही जिनवर होवे रे।
भृंगी इलिकाने चटकावे, ते भृंगी जग जोवे रे।।– श्री आनन्दघन

(पृष्ठ संख्या १९ से आगे...)

जब–जब संयोगमें मीठापन लगता है तब–तब ज़हर खा रहा हूँ, यह विचारमें आयेगा तो अधिक रस नहीं आयेगा, वरना तो इतना रस आयेगा! कि थोड़ेसे कालमें इतना रस ले लेगा कि छूटना मुश्किल हो जायेगा! इच्छापूर्वक परपदार्थका रुचि व रससे सेवन करें और संसार दुःख न हो (ऐसा) तीन कालमें सम्भव नहीं। ऊपरसे इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र आये तो भी इसके दुःखसे कोई नहीं बचा सकता – यह नियमबद्ध बात है। कोई भी जीवको संसारदुःख नहीं चाहिये परन्तु वह ज़हर खाता है, इच्छापूर्वक ज़हर खाता है और फिर कहता है मुझे इसका फल नहीं चाहिये! (सो तो) तीनकालमें सम्भव नहीं। हम दुःखी होंगे, होंगे और होंगे ही (यह) निश्चित बात है।

मुमुक्षु :– सुखको चाहता है परन्तु सुखका कारण ऐसे धर्मका सेवन नहीं करता।

पूज्य भाईश्री :– चाहता है सुख और सेवन करता है दुःखके कारणका, और वह भी इच्छापूर्वक और रुचिपूर्वक। फिर हम कहते हैं दुःख मुझे नहीं चाहिये, सो तो कभी भी शक्य नहीं। – यह वस्तु स्वरूप है। मूलमें इस वचनामृतका विषय है वह यह है कि वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। – ऐसा कहनेका आशय है कि वस्तुका ऐसा स्वरूप है। वस्तुका स्वरूप नहीं बदलेगा। तीनकालमें वस्तुका स्वरूप बदलनेवाला नहीं है।

(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल–१०६, 'अध्यात्मसुधा' भाग–३, दि.– ६–५–१९८७, पन्ना–३८५,३८६, प्र.क्र.–८४)

आकुलता होनेका वास्तविक कारण !

– सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

'परपदार्थ परका है, अपना नहीं होता, अपना बनानेमें मात्र आकुलता होती है।' यह भी जाँचका विषय है कि जब–जब मैं परपदार्थमें ममत्व करता हूँ तब मुझे अच्छा लगता है कि मुझे आकुलता होती है? यह मेरा बेटा, ठीक! मेरा माने अच्छा। कोई बुरा बताते हैं उसको तो आपको अच्छा लगता है या आकुलता होती है? यह जाँचका विषय बनता है। यहाँ अभी तो हाँ भरते हैं कि, ठीक है। जैसा आप कहते हैं वैसा ही है। परपदार्थको अपना बनानेमें तो आकुलता ही होती है। बात बिलकुल सही है परन्तु किसके लिये सही है?

मुमुक्षु :– तब तो अच्छा लगता है।

पूज्य भाईश्री :– अच्छा लगता है। गुणीयल हो, अच्छी कमाई करता हो और मीठे–मीठे, प्यारे–प्यारे शब्दोंसे भाईजी...भाईजी...दादाजी...दादाजी जो भी जिसको बोलते हो वह जीवको सुहाता है कि यह बहुत बढ़िया! बहुत बढ़िया! ऐसे बेटे बहुत कम लोगोंको होते हैं। ठीक! फिर तू तो गया, गहरे कूँएमें गिरा! खींचकर बाहर निकालना मुश्किल होगा।

यहाँ तो पूछते हैं कि, इसमें आकुलता महसूस होती है? जाँच करके पक्का कर कि अच्छा महसूस होता है या आकुलता होती है? जहाँ आकुलता है वास्तवमें वहाँ तुझे अच्छा लगता है तो तू इस दुःखसे कैसे निकलेगा? है तो दुःख ही, तुझे भले लगे चाहे न लगे यह दूसरी बात है। तेरी कल्पना सुखकी होनेसे क्षणभर तुझे नहीं लगता है किन्तु इससे दुःख तो कोई सुख नहीं हो जायेगा। काँच कोई हीरा नहीं बन जायेगा। पत्थर कोई हीरा नहीं बन जाएगा। पत्थरको हीरा मान ले; नदीमें होते हैं न विभिन्न रंगके पत्थर? बच्चे लोग इकट्ठा करते हैं और मानते हैं कि मेरे पास हीरेका डिब्बा भरा है। किन्तु इससे कोई हीरे नहीं हो जाते।

फिर जिस पर ममत्व होगा उसे कुछ होगा तब, क्योंकि होगा तो ज़रूर? शरीरमें शाता–अशाताका उदय तो आयेगा ही तब यह जीवको कुछ होने लगेगा। किसे होने लगेगा? जिसे ममता है उसको। (एकत्वकी वज़हसे) उसकी जगह इस जीवको कुछ होने लगता है। ऐसी दशा एकत्वबुद्धिमें हुए बिना नहीं रहती। ममता करते वक्त दुःखमूलको पुष्ट करता है जीव, इसका विचार नहीं आता है फिर जब कल्पनासे बाहरका या सोचसे बाहरका कोई प्रसंग आ पडे, जिसे हमलोग प्रतिकूलता कहते हैं तब फिर दुःखका अनुभव होता है, किन्तु भाई! सो तो ममता करते वक्त इसका मीठापन अनुभव करते वक्त ही तूने ज़हर खा लिया था! अब तू कहता है मुझे दुःख होता है! परंतु पहले मीठापन लगा वही तेरी भूल थी। अब कड़वा तुझे बादमें लग रहा है। मीठापनका ज़हर तो तू पहले खा चुका।

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १८ पर...)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

‘सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे’

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition : **3585**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041